International Journal of Geology, Agriculture and Environmental Sciences (peer reviewed journal)
Volume – 9 Issue – 1 January-June 2021 (Special Issue)
Website: www.woarjournals.org/IJGAES *ISSN: 2348-0254*

प्राचीन भारत में कर व्यवस्था का उदय एवं विकास

डॉ. रविन्द्र कुमार
सहायक आचार्य, इतिहास विभाग
महारानी बालिका पी. जी. महाविद्यालय,रामपुरा अलसीसर झुन्झुनूं
डॉ. धीरज कुमार
सहायक आचार्य, अतिथि
सेठ बुधमल दुगड राजकीय पी. जी. महाविद्यालय,सरदारशहर , चूरूं

लिखित साक्ष्यों के अभाव में सिन्धु सभ्यता की राजस्व व्यवस्था के विषय में तो निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, लेकिन वैदिक साहित्य से इस विषय में कुछ जानकारी अवश्य मिलती है। वैदिककाल को विचारों के अभ्युदय का प्रथम चरण कहा जा सकता है, क्योंकि तत्कालीन साहित्य में आधुनिक राजस्व के सिद्धान्तों का प्राथमिक स्वरूप देखने को मिलता है। इस समय तक काफी संख्या में राज्यों तथा साम्राज्यों का अभ्युदय हो चुका था, जिसके अन्तर्गत वित्तीय व्यवस्था करना आवश्यक था, किन्तु उस समय केवल उन्हीं विचारों तथा सिद्धान्तों की रचना की गई, जिनसे उन राज्यों तथा साम्राज्यों की रक्षा सम्भव हो सके। सम्राटों अथवा राजाओं के उदय का उल्लेख हमें ऋग्वेद में अवश्य मिलता है, परन्तु उनके बाहुल्य से यह भी स्पष्ट होता है कि इस युग के पूर्व भी साम्राज्यों की वृद्धि के लिए आवश्यक था कि वित्तीय व्यवस्था के लिए समुचित विचारों का संग्रह कर उन्हें कार्यान्वित किया जाए।

इस व्यवस्था को कार्यान्वित करने के लिए राज्य को राजस्व की आवश्यकता थी। अतः राज्य द्वारा कुछ नियम निर्धारित कर दिये गये, जिनके आधार पर प्रजा अपने उत्पादन का कुछ भाग राजकीय कार्यों के लिए प्रदान कर सके। राज्यों को किन–किन साधनों से राजस्व की प्राप्ति होती थी, इसका विस्तृत उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है।

राजकीय आय के साधन

वैदिक काल में राजा की कल्पना की जा चुकी थी। राजा को युद्ध, शासन व्यवस्था और व्यक्तिगत कार्यों के लिए धन की आवश्यकता पड़ती थी। जिसकी पूर्ति राजा विभिन्न स्त्रोतों से करता था। आय के स्त्रोतों में प्रमुख कर संग्रह था।

कराधान – वैदिक मन्त्रों में राजा द्वारा प्रजा से कर लेने के संकेत मिलते हैं। सर्वसाधारण के हित के कार्यों का संचालन करने के लिए सरकार जो धन जनता से अनिवार्य रूप से वसूलती है, वह 'कर' कहलाता है।

ऋग्वेद में एक मन्त्र में कहा गया है –

इन्द्र सोमं ऋतुनाऽव्वा विशन्तिदवः। मत्सरासस्तदोकसाः।।[1]

अर्थात् हे इन्द्र! (राजन्) तू ऋतु के अनुसार ऐश्वर्य का (सोमं) पान कर, यह ऐश्वर्य (इन्द्रवः) तुझे प्राप्त हो, तुझे हर्षित करने वाले हो और सदा तेरे घर अर्थात् राज्य–कोष में रहें।

इस मन्त्र में राजा ऋतु के अनुसार ऐश्वर्य का पान करें इस वाक्य का भाव यह है कि ऋतु, ऋतु में राज्य में जो नाना प्रकार की वस्तुऐं उत्पन्न होती रहती हैं और उनका जो लेन–देन होता है, उससे प्रजाओं को प्राप्त होने वाले ऐश्वर्य में से राजा भी कुछ भाग लिया करें। जिससे वह राज्य प्रबन्ध कर सके।

ये ऐश्वर्य तुझे प्राप्त हो का आशय यह है कि राजा को यह देखना चाहिए कि प्रजाओं से प्राप्तव्य धन राजकोष में अवश्य प्राप्त होता रहे । उसकी प्राप्ति में किसी प्रकार की ढील न रहे ।

'हर्षित करने वाले हों' का भाव यही है कि राजा प्रजा से प्राप्तव्य धन को इस रीति से प्राप्त करें और उसका व्यय भी इस रीति से करें कि राजा और प्रजा सभी को हर्ष प्राप्त हो।

तेरे घर अर्थात् राज्य–कोष में रहें। का अभिप्राय यह है कि राज्य कोष कभी रिक्त नहीं रहना चाहिए। वह सदा धन से भरा रहे।

ऋग्वेद के एक अन्य मन्त्र में कहा गया है –

मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये। सजूर्गणेन तृम्पतु।।[2]

अर्थात् मरुतो (सैनिकों) वाले इन्द्र (सम्राट) को हम बुलाते हैं कि वह हमारे ऐश्वर्य (सोमं) का पान करें। हमसे ऐश्वर्य लेकर वह (सम्राट) अपनी सेना आदि राज्य कर्मचारियों के समूह के साथ तृप्त होकर रहे। यहाँ प्रजाओं को कहा गया है कि उन्हें सदा ही अपने ऐश्वर्य में से राज्य का देय भाग प्रदान करने के लिए उद्यत रहना चाहिए। राजकीय कर देनें में आनाकानी न करके स्वेच्छा से राज्य को कर प्रदान करना चाहिए।

इसी प्रकार ऋग्वेद के एक मन्त्र में शिक्षा दी गई है –

सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्।[3]

अर्थात् राष्ट्रोन्नति के बाधक विघ्नों को मारने वाले (वृत्रहा) हे विद्वान, इन्द्र (सम्राट) आप हमारे ऐश्वर्य का पान कीजिए। यहाँ भी सोमपान की प्रार्थना द्वारा वही उपदेश दिया गया है। यहाँ पर इन्द्र के लिए विद्वान विशेषण महत्वपूर्ण है। विद्वान का अर्थ है जानने वाला अर्थात् समझदार। राजा प्रजाओं से कर प्राप्त करे, लेकिन बहुत सोच–समझकर, वह इतना कर ले, जिसको लोग सुगमतापूर्वक प्रदान कर सकें। प्रजाओं को कर भार से इतना न लाद दें कि वे उस भार को उठा ही न सकें, तभी कर चोरी की प्रवृत्ति को रोका जा सकता है।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है –

तुभ्यं भरन्ति क्षितियो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात्।[4]

अर्थात् हे राष्ट्र में से बुरी बातों को छुडाने और अच्छी बातों को राष्ट्र में लाने वाले (यविष्ठ) अग्ने (सम्राट) प्रजाजन (क्षतयः) समीप और दूर सब कहीं से कर (बलि) लाकर तुझे देते हैं।

इस ऋचा में स्पष्ट निर्देशित किया गया है कि राजा को राष्ट्र की राजधानी के निकट या दूर कहीं भी रहने वाले प्रजाजनों से कर प्राप्त करना चाहिए। यहाँ कर के लिए 'बलि' शब्द का प्रयोग किया गया है। जो–जो ईमानदारी से राजा को कर प्रदान करते हैं उन्हें सुख ही सुख मिलता है। यह भाव ऋग्वेद के निम्न मन्त्र में परिलक्षित होता है –

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति।

न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति।।[5]

अर्थात् अपने व्यवहारों की सिद्धि करने वाले जो प्रजाजन (राजा उसके बदले में हमारी रक्षा करेगा ऐसी कामना वाले मन के साथ) अपने पूरे दिल से इन्द्र (सम्राट) के लिए ऐश्वर्य उत्पन्न कर देता है, उसकी गौवों (गाय, भूमि आदि) को यह राजा नहीं छीनता और उसके लिए यह प्रशंसनीय और मंगल ही मंगल करता है।

इसका भाव यह है कि जो राजा को कर के रूप में ऐश्वर्य प्रदान करते हैं उन्हीं का मंगल और रक्षण राज्य करता है। जो राजा को कर प्रदान न करे उनकी गौ, भूमि आदि को भी सम्राट छीन सकता है। जो धनवान होकर भी राजा को नियमानुसार कर नहीं देते, उन्हें यह नहीं समझना चाहिए कि वे चालाकी से बच जायेंगे, राज्य कर्मचारी ऐसे करवंचकों का पता लगाकर उनके सामने जा पहुँचेगें और उन्हें वश में कर लेंगे। वे किसी प्रकार छूट नहीं सकते। जो निर्धन हो उन्हें कर देने की कोई आवश्यकता नहीं। धनी होकर भी राजा, को कर न देने वालों को वेद में ब्रह्मद्वेषी माना गया है, जिसकी अभिव्यक्ति निम्न ऋचा से होती है –

अनुष्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम्।

निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः।।[6]

अर्थात् यदि राजा को कर प्राप्त न होगा तो वह राष्ट्र की रक्षा नहीं कर सकता। राष्ट्र में ज्ञान का, शिक्षा का प्रचार नहीं कर सकता, इसलिए ऐसे लोग वास्तव में ब्रह्मद्वेषी ही हैं।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में –

अथो त इन्द्रः केवलीर्विशो बलिहतस्करत्।[7]

प्रजा के लिए स्पष्ट रूप से बलिहतः अर्थात् कर देने वाली विश्लेषण का प्रयोग किया गया है।

महर्षि दयानन्द वेद को ही सब सत्य विधाओं का स्त्रोत मानते हैं। उनका मानना है कि जो राजा न्यायपूर्वक प्रजा से कर लेता है, वह सबको बढ़ाने योग्य होता है।[8] जैसे जौक, बछड़ा, और भंवरा थोडे–थोडे भोग्य पदार्थों को ग्रहण करते हैं, वैसे राजा, प्रजा से थोडा–थोडा वार्षिक कर लेवे।[9]

कराधान पद्धति

कराधान के सम्बन्ध में स्वामी दयानन्द सरस्वती शासक को उपदेश देते हैं कि जैसे जोंक शरीर के किसी अंग पर चिपकती है तो वह एकदम सारा रक्त नहीं चूसती, अपितु धीरे–धीरे और थोडा–थोडा रक्त चूसती है। जैसे गाय का बछडा थोडा–थोडा दूध पीता है, और भँवरा थोडे–थोडे पुष्पत्स का पान करता है, वैसे ही राजा को भी प्रजा से थोडा–थोडा कर लेना चाहिये, क्योंकि थोडा–थोडा कर लेने से प्रजा को अधिक भार प्रतीत नहीं होता और प्रजा बड़ी सुविधा से बिना किसी कष्ट के श्रद्धा से कर दे सकती है।

स्वामी दयानन्द के अनुसार राजा कर लेते समय लोभ न करे। अपितु लोभ करने से राजा और प्रजा दोनों के सुख मूल नष्ट होते हैं।[10] जिस प्रकार राजा, प्रजा की आय–व्यय की स्थिति देखकर कर लेता है और उसके अनुसार बदले में वह उसी धन को प्रजा के परोपकार में लगा देता है, उसी प्रकार प्रजा का भी कर्त्तव्य हो जाता है कि वह बहुत ही ईमानदारी से अपना कर्त्तव्य समझ कर राजा को बिना कर की चोरी किए कर अदा करे।[11]

अथर्ववेद के अनुसार प्रजा को प्रसन्न होकर राजा को भाग, बलि और कर देना चाहिए।[12]

ऋग्वेद के एक मन्त्र से यह स्पष्ट होता है कि राजा को प्रजा से कर वर्ष में दो बार लेना चाहिए।[13]

अथर्ववेद के निम्न मन्त्रो से कर ग्रहण पद्धति के संकेत मिलते हैं –

1. इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनामिवा वहत्।[14]

अर्थात् हमारे इस हवि अर्थात् राजा को दिये जाने वाले कर भाग ने यातुधानों अर्थात् प्रजापीडकों को इस तरह बहा दिया है, जैसे नदी झाग को बहा देती है।

2. यातुधानस्य सोमपं जहि प्रजाम्।[15]

अर्थात् हे हमारे ऐश्वर्य का पान करने वाले अग्नि (राजन्) तू प्रजापीडकों को नष्ट कर दे।

3. सोमपा अभयङ्करः[16]

यह इन्द्र (सम्राट) हमारे ऐश्वर्य (सोम) का पान करता है, उसके बदले में हमारे लिए अभय करता है।

4. बहुँ बलि प्रति पश्यासा उग्रः।[17]

अर्थात् हे सम्राट प्रजाओं से प्राप्त होने वाले प्रभूत पर (बलि) की ओर देख।

5. दीर्घनआयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम।[18]

अर्थात् हे मातृ–भूमि हम लम्बी आयु भोगते हुए तुझे कर (बलि) देते रहे। मातृ भूमि को कर देने का अभिप्राय अपने राज्य को कर देना है।

6. ध्रुवं ध्रुवेण हविषाव सोमं नयामसि।[19]

अर्थात् ध्रुव दान द्वारा (हविषा) हम इन्द्र (सम्राट) के पास ध्रुव ऐश्वर्य (सोम) पहुँचाते हैं।

कर का प्रयोजन

महर्षि दयानन्द ने वैदिक मन्त्रों की व्याख्या द्वारा स्पष्ट किया है कि जो राजा प्रजा से कर लेकर पालन न करे, तो वह राजा डाकुओं के समान है, इसलिए प्रजा राजा को कर देती है जिससे कि वह प्रजा पालन करे और राजा इसलिए पालन करता है जिससे कि प्रजा उसको कर दे।[20]

करारोपण की मात्रा

राजा को प्रजा से कितना कर लेना चाहिए, इसका स्पष्ट उल्लेख हमें वेदों में प्राप्त नहीं होता है। किन्तु वेदों से यह अवश्य स्पष्ट होता है कि राजा को इतना कर लगाना चाहिए जिससे प्रजाजनों को कष्ट न हो और सभी प्रजाजन उसे प्रसन्नता से राजकोष में जमा करवा दें। इस तथ्य की पुष्टि ऋग्वेद में निम्न मंत्र से होती है –

स जायमानः परमे व्योमन् वायुर्न पाथः परि पासि सद्यः।

त्वं भुवना जनयन्नभि क्रन्नपत्याय जातवेदो शस्यन्।।[21]

इस मन्त्र का भाव यह है कि वायु जैसे बिना जाने जल को पी लेता है वैसे ही राजा को भी प्रजा से धन ग्रहण ऐसी सूक्ष्म रीति से करना चाहिये कि उसको मालूम ही न पडे। अर्थात् उतना ही कर लेना चाहिए जो उन्हें पीडा देने वाला न हो। पीड़ा–रहित कर लगाने से प्रजा निर्धारित कर–राशि को प्रसन्नता से देती है तथा सन्तुष्ट रहते हुए राज्य के साथ पूरा सहयोग करती है।

अथर्ववेद के निम्न दो मन्त्रो में आय का सोलहवाँ हिस्सा कर के रूप में ग्रहण करने का उल्लेख मिलता है –

यद् राजानो विभजन्त इष्टापूर्त्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः।

अविस्तस्मात् प्र मुञ्चति दत्तः शितिपात् स्वाधा।।[22]

अर्थात् (यत्) जो (यमस्य अभी राजानः सभासद) पूर्णतः नियमानुकूल प्रजा का पूर्ण हित ध्यान में रखते हुए शासन करने वाले राजा या राज्याधिकारी के राज्य की उचित व्यवस्था करने वाले सभासद या राज्य के प्रतिनिधि (इष्टापूर्तस्य षोडश विभजन्ते) इष्ट एवं पूर्तस्वरूप राज्य को सामूहिक आय से प्राप्त अन्न एवं अन्य पदार्थों का सोलहवाँ भाग विभक्त कर, कर रूप में ग्रहण करते हैं (दत्तः) वह प्रजा द्वारा अनिवार्य रूप में दिया गया भाग (अविः) सकल स्वतन्त्र राष्ट्र का रक्षक (शितिपात्) शान्ति व्यवस्था भंग करने वाले अथवा राष्ट्र में अवांछनीय तत्त्व उत्पन्न करने वाले शासकों का संहारक होकर राष्ट्र को (स्वधा) अपनी शक्ति से स्वयं धारण करे (तस्मात् विमुंचति) इस प्रकार वही कर राष्ट्र को समस्त प्रकार के भय से मुक्ति दिलवाता है –

सर्वान् कामान पूरयत्याभवन् प्रभवन् भवन्।

आकृतिप्रोऽविर्दत्तः शितिपान्नोप दस्यति।।[23]

अर्थात् (दत्त) कर के रूप में प्रजा द्वारा दिया हुआ यह भाग (आकूतिप्रः) संकल्पों को पूर्ण करने वाला (शितिपात्) दुष्टों को दमन करने वाला (अविः) समस्त शत्रुओं से रक्षा करने वाला (आभवन) राष्ट्र का विस्तारक (प्रभवन) वीर, विद्वान एवं योग्य व्यक्तियों की कीर्ति एवं प्रभाव को उत्पन्न करने वाला (भवन्) राष्ट्र के अस्तित्व का हेतु होकर (सर्वान् कामान् पूरयति) राष्ट्र की समस्त कामनाओं को पूर्ण करता है और इस प्रकार (न उपदस्यति) राष्ट्र या समाज के विनाश से हम सबकी रक्षा करता है।

अथर्ववेद के उपर्युक्त दोनों मन्त्रों में कर–व्यवस्था का आदर्श बताया गया है तथा यह आदेश दिया गया है कि इस प्रणाली को अपनाकर स्वतन्त्र राष्ट्र प्रजा के मध्य एक अलौकिक समृद्धि उत्पन्न कर सकता है। यहाँ ईष्ट और पूर्त आय के दो साधन बताये गये हैं। जो आय अनवरत इच्छा या चेष्टा द्वारा होती है उसको इष्ट कहते हैं। इसमें कृषि, उद्योग–धन्धे एवं शिल्प आदि का समावेश होता है। इस आय के लिए कर्त्ता को अनवरत प्रयत्नशील रहना पड़ता है। एक बार अधिक प्रयत्न करने से जो आय अनवरत होती है, वह पूर्त कहलाती है।

एक बार मकान किराये पर चढ़ा कर या धन जमाकर पुनः पुनः किराया या ब्याज लेना इसके अन्तर्गत आते हैं। एक बार उद्यान लगाकर प्रतिवर्ष फल प्राप्त करना भी पूर्त के अन्तर्गत आता है।

इस इष्ट अथवा पूर्त से नागरिकों को जो आय होती है उसका सोलहवाँ भाग कर रूप में एकत्रित करने का वैदिक विधान है। बाद में स्मृतिकालीन साहित्य में यह सोलहवाँ भाग बढ़कर छठा भाग ग्रहण करने की प्रणाली कालीदास के काल में भी प्रचलित थी।[24]

ब्राह्मणों को करों से मुक्ति

वैदिक विवरणों से ज्ञात होता है कि राजा सभी प्रजाजनों से कर लेता था, लेकिन अथर्ववेद[25] के एक मन्त्र में राजा को ब्राह्मण से 'शुल्क' अथवा 'कर' लेने का निषेध किया गया है और कहा गया है कि जो लोग ब्राह्मण से शुल्क लेते हैं वे अनर्थ करते हैं और इसीलिए विपत्ति में फँसते हैं। कर का मुख्य भार अधिकतर वैश्यों पर ही पड़ता होगा, क्योंकि वैश्यों को ऐतरेय ब्राह्मण में कर देने वाला कहा गया है।[26]

करों के प्रकार

वेदों में निम्नलिखित प्रमुख साधनों से धन प्राप्त करने के संकेत मिलते हैं –

1. बलि

वैदिक ग्रन्थों में 'बलि' शब्द का प्रयोग मिलता है। विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की बलि देवताओं तथा देवतुल्य राजाओ के लिए दी जाती थी। इसी को तत्कालीन कर प्रणाली कहा जा सकता है।

वर्तमान समाज में कर का स्वरूप बदल चुका है, किन्तु उस समय राजा को कर के रूप में प्रदान की जाने वाली वस्तु के लिए बलि शब्द का प्रयोग किया जाता था।[27]

ऋग्वैदिक काल में यज्ञीय परम्परा का विशेष प्रचलन था। इसकी भी कल्पना कर के रूप में ही की गई है, जिसे राजा तथा प्रजा के हित में सम्पन्न किया जाता था। यज्ञ की क्रिया से प्राप्त होने वाले पुण्य का भागी राजा तथा प्रजा दोनों को बतलाया गया है। अतएव आर्थिक दृष्टि से यज्ञ राजा का महत्त्वपूर्ण अंग था।

ऋग्वैदिक काल में राजा को युद्ध, शासन व्यवस्था और व्यक्तिगत कार्यों के लिए धन की आवश्यकता पड़ती थी। इसलिए कुछ विद्वानों का मत है कि कबीले के लोग अपनी इच्छा से कुछ भाग देते थे, जो 'बलि' कहलाता था।[28] ऋग्वेद में बलि का प्रयोग देवताओं को उपहार[29] तथा राजा को कर देने के लिए हुआ है, लेकिन जहाँ राजा से सम्बन्ध है वहाँ बलिहृत शब्द का प्रयोग हुआ है।[30]

मैकडॉनल और कीथ के अनुसार बलि प्रारम्भ से ही एक नियमित कर था, क्योंकि छोटे कबीलाई राज्य भी स्वैच्छिक चन्दों से नहीं चल सकते थे।[31] **यू. एन. घोषाल** के अनुसार राजा अपना राजस्व अथवा उसका एक भाग अपनी प्रजा के अंशदान से प्राप्त करता था, जिसे पारिभाषिक शब्दावली में 'बलि' कहते थे।[32] उदाहरणार्थ ऋग्वेद के एक सूक्त में राज्याभिषेक के सन्दर्भ में कवि यह प्रार्थना करता हुआ पाया जाता है कि इन्द्र प्रजाजनों (विशों) से राजा को बलि दिलाए।[33] यह मत भी प्रतिपादित किया गया है कि यदि बलि ऐच्छिक अंशदान न होकर कानून द्वारा नियत आय होती तो यह कथन अर्थहीन होगा।[34] दूसरी ओर यह तर्क दिया गया है कि चूँकि वैदिक भारतीय यर्थात्: विजयी आक्रमणकारियों का समूह मात्र थे, अतः उनके सन्दर्भ में प्रजाजनों द्वारा ऐच्छिक उपहार देने की पद्धति अत्यन्त असम्भाव्य होगी।[35]

आदिम समाज के विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया[36] को देखते हुए यह अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि बलि, जिसका स्वरूप ऐच्छिक था, आगे चलकर अनिवार्य भुगतान में परिणत हो गई। ऋग्वेद साक्ष्य के आधार पर निश्चित रूप से यह कहना सम्भव नहीं है कि उत्तरवर्ती काल की ही भाँति बलि पूर्णतः कृषि उत्पादन पर वसूल की जाती थी, किन्तु सम्भावना इस अनुमान के पक्ष में ही प्रतीत होती है।

उत्तरवैदिक काल में बलि एक नियमित कर हो गया था।[37] इसकी पुष्टि इस काल के साहित्य में राज्याभिषेक के समय एक मन्त्र में राजा को विशामत्ता (प्रजा का खाने वाला) कहने से होती है।[38] अथर्ववेद में पुनः राज्य प्राप्त करने वाले एक राजा के विषय में कहा गया है कि उसे प्रचुर मात्रा में उपहार एवं बलि प्राप्त हो।[39]

अनेक मत मतान्तरों के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय लोगों ने स्वयं अपने पराक्रम से राज्य व्यवस्था को समुचित स्वरूप प्रदान करने के लिए इस कर स्वरूप बलि को भेंट के रूप में जन्म दिया था। इसकी कल्पना मनु के शासक होने के समय से ही की जा चुकी थी। ब्रह्म द्वारा मनु को राजा बनाये जाने के बाद ही प्रजा ने उत्पादन का 1/6 भाग राजा को देने का निश्चय कर लिया था। शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर बलि शब्द की व्याख्या तथा उसके अर्थ को समझने का प्रयास किया गया है, जहाँ अध्वर्य, संध्या के समय बलि प्रदान करते समय सोचता है, मैं इस जीवन के तत्त्व को ईश्वर में भेंट करता हूँ, और तत्पश्चात् वह अपना भोजन ग्रहण करता है। इसी प्रकार अग्नि में होम (आहूति) करने वाले व्यक्ति के द्वारा बलि उसके चारों ओर बाँट दी जाती है।

प्रो. इगलिंग तथा **टामस** ने इस बलि की प्रक्रिया को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। **प्रो. टामस** ने बलि से मुक्त होने के विचार को आधुनिक कर के विचारों से सम्बद्ध किया है। उनके अनुसार 'बलि' का प्रयोग उस समय धार्मिक क्रियाओं के रूप में अनिवार्य रूप से किया जाता था।[40]

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि बलि एक अनिवार्य कर का स्वरूप था, जिसे आज भी हम अपनी जीवनोपयोगी वस्तुओं में से कुछ भाग के रूप में राज्य को प्रदान करते हैं। अन्तर केवल इतना है कि वर्तमान में मुद्रा का एक निश्चित स्वरूप निर्धारित कर दिया गया है और किसी भी प्रकार की बलि निश्चित मुद्रा के रूप में प्रदान की जाती है।

2. भाग

वैदिक युगीन आय का दूसरा प्रमुख स्त्रोत भाग था। यह शब्द एक संयुक्त शब्द भागधुक् से सम्बन्धित है, इसका उल्लेख तैत्तरीय संहिता में मिलता है।[41] वैदिक इण्डेक्स में भी इस शब्द की स्पष्ट व्याख्या नहीं मिलती है। वैदिक इण्डेक्स में सायण के अनुसार इस शब्द का अर्थ स्पष्ट करने का प्रयास किया है, जिसके अनुसार भागधुक् कर संग्रहकर्त्ता था। इसलिए भाग का अर्थ भी एक प्रकार का कर है।[42]

इसके अतिरिक्त काठक संहिता[43] तथा शतपथ ब्राह्मण[44] में भी भाग शब्द का प्रयोग मिलता है। इस प्रकार भाग शब्द की गहराई एवं उसके प्रयोग से यह निष्कर्ष निकलता है कि वैदिककाल में बलि की तरह इसका भी प्रयोग कर प्रणाली के अन्तर्गत ही किया जाता था। किन्तु बाद में विचारकों ने इसकी कर के रूप में विस्तृत व्याख्या की, और उसे उत्पादन का 1/6 भाग बताया है। इन विचारकों के विचारों के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भाग तत्कालीन समाज में प्रचलित एक प्रकार का कर था, जिसे वैदिक समाज में काफी महत्त्व प्रदान किया गया था। उसी का परिवर्तित स्वरूप आज भी वस्तु कर के रूप में प्रचलित है।

3. शुल्क

अथर्ववेद में शुल्क का उल्लेख मिलता है।[45] यह भी आय के साधनों में से एक था। राजा लोगों से शुल्क के रूप में धन प्राप्त करता था।[46]

4. युद्ध में विजित समुदायों से प्राप्त कर (खाण्डनी)

आर. सी. मजूमदार का मानना है कि वैदिककाल में आय प्राप्ति के साधनों में से एक साधन विजय के द्वारा प्राप्त धन था, जो युद्ध तथा आपातकालीन स्थिति के समय प्राप्त किया जा सकता था।[47] इसका उल्लेख हमे मैत्रायणी संहिता में मिलता है। वहाँ इसकी कल्पना आज्य के रूप में की गई है। **प्रो. डेलब्रक** ने इस विचार से अपनी सहमति प्रकट की है।[48] उनके अनुसार आज्य विजय से प्राप्त धन का ही एक भाग था जिसे राजा युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् लिया करता था। (संग्राम जित्य) शब्द से उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है।

यू. एन. घोषाल ने इस कर के सन्दर्भ में एक सूक्त का उदाहरण दिया है, जिसमें अग्नि को सम्बोधित सूक्त में देव उपलब्धियों की प्रशंसा करता हुआ कवि कहता है कि उसने राजा नहुष को बलि देने के लिए प्रजाजनों को बाध्य किया।[49] इन्द्र को सम्बोधित एक अन्य सूक्त[50] में देवों द्वारा प्राप्त एक विजय के सन्दर्भ में कहा गया है कि तीनों विशिष्ट नामांकित देशों ने घोड़े का सिर बलि के रूप में उसे दिया था। साधारणतया यह माना जाता है कि इन अवतरणों में राजा द्वारा विजित शत्रुओं से बलपूर्वक कर संग्रहण का निर्देश है।[51]

5. कृषि कर

कृषि कर के सन्दर्भ में अथर्ववेद में निम्न उल्लेखनीय मन्त्र मिलता है[52]–

तिस्त्रो मात्रा गन्धर्वाणां चतस्त्रो गृहपत्न्याः।

तासाँ या स्फातिमत्तमा तया त्वाभिमृशामसि।।

अर्थात् तीन मात्राएँ गन्धर्वों की है, चार गृह पत्नी की है। उनमें से जो सबसे समृद्ध मात्रा है उससे हे धान्य। हम तुझे बढ़ाते हैं।

इस मन्त्र में एक महत्त्वपूर्ण बात विचारणीय है कि कृषि से जो अन्न उत्पन्न हो उसमें तीन भाग (मात्रा) तो गन्धर्वों के पास जाने चाहिए और चार भाग (मात्रा) गृहपत्नी के पास अर्थात् कृषक के घर जाने चाहिए। यदि गन्धर्व का अर्थ राज्य कर्मचारी से किया जाये तो, क्योंकि वे गौ अर्थात् पृथ्वी को धारण करते हैं, इसका यह भाव होगा कि कृषि की उपज का 3/7 भाग तो राज्य ले और 4/7 भाग कृषक के पास रहे। कृषक का कृषि की फसल पर जो व्यय होगा उसे निकाल कर उसके पास जो शुद्ध आय बचेगी उसी में से राज्य को यह 3/7 भाग कर के रूप में दिया जायेगा।

6. सिंचाई कर

ऋग्वेद में कुल्याएँ (नहरों) का सिंचाई के प्रसंग में वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में कृषि के सन्दर्भ में निम्न मन्त्र उल्लेखनीय है[53]–

अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तोऽहिमिन्द्रो अर्णोवृत्तं वि वृश्चन्।

प्र यद् वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयासि च नदीनां चक्रमन्त।।

ऋग्वेद के उपर्युक्त मन्त्र के अनुसार राजा जो सिंचाई की व्यवस्था करता है वह प्रजा से प्राप्त कर द्वारा ही सम्भव होती है। प्रकारान्तर से इस मन्त्र से यह ध्वनि निकलती है कि प्रजा, राज्य निर्मित्त नहरों से खेती के लिए यदि वे पानी लेती हैं तो उसे उसका कर भी देना चाहिए।

7. गोधन कर

ऋग्वेद में गोधन से प्राप्त आय पर भी कर के संकेत मिलते हैं। कृषि, व्यापार, उद्योग के समान पशु पालन में राज्य का पूर्ण सहयोग रहता है। यह तभी सम्भव है, जब पशु धन से राज्य को नियमित रूप से कर की प्राप्ति होती रहे। ऋग्वेद में कहा गया है कि जो व्यक्ति अपने गोधन की आय में से राज्य को अपना देय भाग प्रदान करता रहता है, राज्य उसकी गायों की रक्षा करता है और उन पर किसी प्रकार का आक्रमण नहीं होने देता।[54]

8. सामान्य पशु कर

ऋग्वेद के निम्न मन्त्र में गौ, अश्व आदि पशु एवं भोजन आदि की रक्षा के निमित्त राज्य को कर देने का निर्देश है[55]—

आदङ्.गराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया।

सर्व पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशु नरः।।

इस मन्त्र का भाव यह है कि दस्युजन हमारे पशुओं को बलपूर्वक छीन कर न ले जा सके, इसलिए हमें बलिष्ठ बनना चाहिए, अपने संगठन बनाने चाहिए, साथ ही राज्य का देयांश कर रूप में राजा को देना चाहिए।

9. व्यापार कर

अथर्ववेद के वाणिज्य सूक्त में एक मन्त्र में कहा गया है –

विश्वाहा ते सदमिद् भरेम।[56]

अर्थात् हे राजन हम सदा तुझे भरण–पोषण देते रहे। इसका अभिप्रायः यह है कि व्यापार की वृद्धि के लिए हमसे कर रूप में धन प्राप्त करें, जिससे राज्य प्रबन्ध की सारी आवश्यकताएँ पूरी होती रह सके। राजा को कर देने से हमें उसकी रक्षा प्राप्त होगी। उस रक्षा से हम अपने वाणिज्य व्यवसाय अच्छी प्रकार कर सकेंगे। वाणिज्य द्वारा धन और अन्न प्राप्त होंगे जिससे हमें पुष्टि प्राप्त होगी।

राजकीय व्यय के प्रकार

वैदिक काल में राज्य अपनी प्रजा पर विविध प्रकार के करों के माध्यम से राजकीय कोष में धन एकत्रित करता था। इस धन के दो प्रमुख प्रयोजन थे –

1. राजा का व्यक्तिगत व्यय

2. प्रजा एवं राष्ट्र के हित में व्यय।

आदर्श राजाओं का यह नियम था कि वे राजस्व के रूप में प्राप्त धन में से बहुत बड़ा भाग प्रजा के लिए खर्च करते थे और बहुत थोड़ा भाग अपने व्यक्तिगत कार्यों में खर्च करते थे।

राजकीय व्यय को प्रमुख रूप से चार भागों में बाँटा जा सकता है –

1. राजा का व्यक्तिगत व्यय;

2. प्रशासन संचालन पर व्यय;

3. सेना एवं सुरक्षा पर व्यय;

4. शिक्षा, चिकित्सा, न्याय आदि पर व्यय ।

1. राजा का व्यक्तिगत व्यय

राजा के पास व्यक्तिगत आय का कोई प्रबल स्त्रोत नहीं होता था, इसलिए राजा प्रजाओं से प्राप्त धन में से ही अपना व्यक्तिगत व्यय करता था। वेदों में इसके संकेत मिलते हैं कि राजा अपना व अपने कुटुम्ब का नित्य–नैमित्तिक व्यय नियमपूर्वक राजकीय कोष से करे। इस विषय में वेद कहता है कि हे राजन् जितना आपको राज्य का भाग लेना चाहिए उतना ही ग्रहण कर भोग कीजिए, न की अधिक न न्यून।[57] वेद के इस विचार से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य राजा की निजी सम्पत्ति नहीं है। वह वेतन लेकर राज्य के एक सर्वोच्च अधिकारी के रूप में कार्य करता है।

2. राज्य–प्रशासन संचालन पर व्यय

इस विषय में वेद मन्त्रों में सूत्र रूप से जो संकेत मिलते हैं, उनका विस्तार करते हुए **मनु** एवं **महर्षि दयानन्द** ने निम्न प्रकार की व्यवस्था की है –

1. सेवा निवृत्त होने के बाद पेन्शन रूप में आधा वेतन मिलना चाहिए;
2. मरने के बाद उसकी पत्नी व बच्चों को आधा वेतन मिलना चाहिए;
3. यदि उसके बच्चे समर्थ हो गए हों तो उन्हें राज्य में अपने पिता के स्थान पर नौकरी मिलनी चाहिए;
4. युद्ध में मरने वाले सैनिकों की पत्नियों को जीवन भर पूरा वेतन, पेन्शन के रूप में मिलना चाहिए;
5. यदि उनके पुत्र समर्थ हो गये हों तो उन्हें भी राज्य के सेना विभाग में नौकरी मिलनी चाहिए। इसके पश्चात् उनकी पत्नियों को आधा वेतन मिलना चाहिए;
6. किसी ने 30 वर्ष तक भी यदि नौकरी कर ली हो तो उसको जीवनपर्यन्त आधा वेतन मिलना चाहिए;
7. मृतक कर्मचारी के यदि स्त्री–पुत्र कुकर्मी हो या धन का दुरुपयोग करते हों तो राजा को चाहिए कि वह उनको धन देना बन्द कर दे;
8. राजा इसका सदैव ध्यान रखे कि जितना मासिक वेतन दिया गया है, उसका भृत्य ने कार्य किया है या नहीं।[58]

राज्य कर्मचारियों के साथ राजा का व्यवहार यथायोग्य होना चाहिए। सत्यनिष्ठ, परिश्रमी, राजभक्त और देशभक्त कर्मचारियों को प्रोत्साहन, सम्मान, पदोन्नति आदि तथा कार्य करने में अकुशल, असत्यभाषी, आलसी, प्रमादी, देशभक्तिहीन, कर्मचारियों को दण्डित करना राजा का कर्त्तव्य है। अच्छे कार्य करने वाले को यदि पुरस्कृत किया जाये तो अच्छा कार्य करने वालों की संख्या में वृद्धि होगी। इन पर व्यय भी सन्तुलित रूप में करना चाहिए।

3. सैन्य व्यवस्था पर व्यय

वेद का लक्ष्य विश्व शान्ति होते हुए भी चोर, डाकू, अन्यायी, अत्याचारी, हिंसक, दुष्टों को तृष्ट करने के लिए सेना का एवं अस्त्र–शस्त्र का होना वेद ने स्वीकार किया है। अथर्ववेद के तृतीय खण्ड के प्रथम तथा द्वितीय सूक्त में राजा के नेतृत्व में शत्रुओं को नष्ट करने, उनकी सेनाओं को खदेड़ने, व्याकुल करने, व्यूह बनाकर उनका मुकाबला करने, शत्रुओं को निहत्था करने आदि का ओजस्वी वर्णन मिलता है।

यजुर्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि धनुर्विद्या से हम उत्तरोत्तर पृथिवियों को जीतें, धनुर्विद्या से हम विविध मार्गों को जीते और धनुर्विद्या से तीव्र वेगवाली शत्रु सेना को जीते। धनुर्विद्या से शत्रु की सब कामनाएँ नष्ट हो जाती है, अतः इसके आश्रय से समस्त दिशाओं को जीतें।[59]

ऋग्वेद में एक मन्त्र में वीर सैनिकों के अस्त्र–शस्त्रों तथा गणवेश का वर्णन अत्यन्त सुन्दरता से हुआ है।[60] **स्वामी दयानन्द** यजुर्वेद भाष्य में लिखते हैं कि – राजा युद्ध में मरे सैनिकों को पेन्शन दे।[61] राजा नित्य प्रति अपनी सैन्य व्यवस्था एवं कोष का निरीक्षण करें, जिससे राजा को राज्य के आय–व्यय की जानकारी होती रहे।[62] वेद ने सैनिकों के भरण–पोषण की जिम्मेदारी राजा को दी है। राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिए कि योद्धा लोगों की सब प्रकार से रक्षा, सबके सुखदायी घर, खाने–पीने योग्य पदार्थ, प्रशंसित पुरुषों का संग, अत्युत्तम बाजे आदि देने में अपने अभिष्ट कार्यों को सिद्ध करे।[63]

ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है कि सैनिकों के स्वास्थ्य संरक्षण के प्रति राजा को जागरुक रहना चाहिए। सैनिकों को दिया जाने वाला भोजन वैधक रीति से सुपरीक्षित, आयु, बल, बुद्धि तथा पराक्रमवर्धक एवं ऋतुओं के अनुकूल होना चाहिए राजा को चाहिए कि वह सेना में चिकित्सकीय सुविधा प्रदान करने हेतु उच्चकोटि के चिकित्सकों की नियुक्ति करे। इस सम्बन्ध में **महर्षि दयानन्द** ने ऋग्वेद के एक मन्त्र व्याख्या करते हुए लिखा है कि जो राजा सेना के भोजन के उत्तम प्रबन्ध को और आरोग्य के लिए वैद्य को रखता है वही प्रशंसित होकर राज्य बढ़ाता है।[64] जो युद्ध में घायल, क्षीण, थके, पसीजे, छिदे–भिदे, कटे–फटे अंग वाले और मूर्च्छित हो, उनको युद्ध भूमि से उठाकर चिकित्सालय में पहुँचा कर औषधी पट्टी कर स्वस्थ करना चाहिए। जो मर जाये उनको विधि से दाह दें। राजा–जन उनके माता–पिता, स्त्री–बालक की सदा रक्षा करे।[65]

4. सैनिकों का सम्मान और उनके परिवारों की व्यवस्था में व्यय

ऋग्वेद एवं यजुर्वेद **दयानन्द** भाष्य के अनुसार सेना राष्ट्र के अस्तित्व, विकास एवं सुरक्षा का मूलाधार है। अतः राजा संग्राम में तेजस्वी, भय–रहित अग्रगामी एवं शत्रुनाशक वीरों का धन, अन्न, गृह और वस्त्रादि से निरन्तर सत्कार करते हुए उन्हें पुत्रवत् पाले।[66]

5. सैनिकों के खेल प्रबन्ध पर व्यय

वेदों में मरुतों (सैनिकों) के लिए अनेक स्थानों पर क्रीऽयः और प्रकीडिनः विशेषणों का प्रयोग हुआ है। इनका अर्थ खेलने वाला होता है। इससे यह भाव निकलता है कि सैनिकों के खेलने का प्रबन्ध सेनाधिकारियों को करना चाहिए –

उपक्रीडन्ति क्रीडाः[67] – ये मरुत क्रीडाएँ अर्थात् खेल खेलते हैं।

क्रीलथ मरुतः[68] – हे मरुतों तुम खेलते हो।

उपर्युक्त शब्दों से यह स्पष्ट होता है कि राज्य को सैनिकों की भली–भाँति व्यवस्था करनी चाहिए। सैनिकों में बलवृद्धि करने तथा उनके स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए जिस प्रकार उनको पौष्टिक भोजन देना आवश्यक है, उसी प्रकार विभिन्न प्रकार के खेलों का प्रबन्ध भी राज्य को करना चाहिए। इन कार्यों में व्यय करना राजा का दायित्व है।

6. सैनिकों के वेतन पर व्यय

ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है –

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते से भ्रातरो वावृधः सौभगाय।

युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुधा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः।।[69]

अर्थात् ये मरुत (सैनिक) ऐसे हैं, जिसमें न कोई बड़ा है न कोई छोटा है, ये सब भाई है, ये सब राष्ट्र के सौभाग्य के लिए मिल कर बढ़ते हैं, अपनों की रक्षा करने वाले युवा सेनापति रुद्र उनका पिता है, अर्थात् पिता के समान हित बुद्धि से उनकी पालना करने वाला है, पृश्नि अर्थात् मातृभूमि इनके दिनों अर्थात् जीवन को उत्तम बनाने वाली बन जाती है । इस मन्त्र से यह स्पष्ट होता है कि राज्य को अपने सैनिकों का भरण–पोषण अच्छी तरह से करना चाहिए। ऋग्वेद के एक अन्य मन्त्र में प्रत्येक सैनिक को उसके सेवन के लिए, उसके खाने–पीने के लिए उसका नियत भाग देने का निर्देश है।[70]

7. शिक्षा पर व्यय

ऋग्वेद के निम्न मन्त्रों से स्पष्ट होता है कि शिक्षा का प्रचार करना राजा का कर्त्तव्य है–

1. तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः।[71]

अर्थात् हे अग्नि! (सम्राट) मनुष्य लोग (मरुतः) तेरे नियमों में रह कर क्रान्तदर्शी विद्वान् सब कर्मों को जानने वाले तीव्र दृष्टि वाले हो जाते हैं। राजा का धर्म है कि वह इस प्रकार का शिक्षा–प्रबन्ध करें कि प्रजा के लोग ज्ञानवान बन जाये।

2. शिक्षा नरः[72]

अर्थात् हे इन्द्र (सम्राट) तू राष्ट्र के लोगों को शिक्षित कर। यहाँ तो स्पष्ट ही शिक्षा प्रचार राज्य का एक कर्त्तव्य माना गया है।

3. धुमान् असि क्रतुमान् इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव न शचीभिः[73]

अर्थात् इन्द्र (सम्राट) तू प्रकाशमान है, कर्मशील और प्रजावान है, शक्तिशाली है, अपनी शक्तियों से हमें शिक्षित कर।

यहाँ भी प्रजा के शिक्षा प्रचार का स्पष्ट वर्णन किया है।

अथर्ववेद में 'पृथिवी सूक्त' में भूमि के लिए एक वाक्य आता है – ब्राह्मण वावृधानाम्।[74]

अर्थात् यह हमारी मातृभूमि ब्रह्म अर्थात् वह ज्ञान द्वारा हमारी वृद्धि करने वाली है। ज्ञान द्वारा मातृभूमि तभी वृद्धि कर सकती है, जबकि उसमें शिक्षा का प्रचार हो।

इस प्रकार वेदों में स्थान–स्थान पर उपदेश दिया गया है कि राजा का अपने राज्य में सब प्रकार की ज्ञानवर्द्धक शिक्षा का व्यापक प्रचार करना चाहिए।

8. बालिकाओं की शिक्षा पर व्यय

अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त में कहा गया है कि कन्या ब्रह्मचर्य पालन द्वारा युवा पति को प्राप्त करती है।[75] ब्रह्मचर्य का अर्थ ब्रह्मचारी अर्थात् विद्यार्थी के व्रतों, नियमों और कर्त्तव्य कर्मों का पालन करना है।

9. चिकित्सा पर व्यय

ऋग्वेद में निम्न मन्त्रों से ज्ञात होता है कि राज्य को अपनी प्रजा के लिए चिकित्सा की व्यवस्था करनी चाहिए –

1. विश्वायुर्धेह्यक्षितम्।[76]

अर्थात् हे इन्द्र! (सम्राट) तू हमें क्षीणता रहित आयु दे।

2. नव्यमायुः प्र सू तिर।[77]

अर्थात् हे इन्द्र! (सम्राट) तू हमारी आयु को बढ़ाकर लम्बी कर और उसे ऐसा बना दे, जिससे सब उसकी प्रशंसा करें।

3. सत्वं नो रायः शिशीहि............अनयीवस्य।[78]

हे अग्नि! (सम्राट) जिसके सेवन करने से रोग न हो, ऐसे धन से हमें समृद्ध कर।

उपर्युक्त मन्त्रों में प्रयुक्त सम्राट के विशेषणों और उनसे की जाने वाली प्रार्थनाओं का यह स्पष्ट अभिप्राय है कि वेद की सम्पत्ति में राजा का यह कर्त्तव्य है कि वह ऐसा प्रबन्ध करें जिससे उसके राष्ट्र के लोग निरोग, बलवान और दीर्घ आयु वाले हो। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि राज्य को राज्य के स्वास्थ्य का पूर्ण प्रबन्ध करना चाहिए। ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि हे अग्नि! (सम्राट) तू रोगों से युद्ध करके उन्हें हमसे परे भगा दे।[79] अथर्ववेद[80] के एक मन्त्र में भी कहा गया है कि हे अग्नि (सम्राट) तू सब प्रकार के रोगों को छुडाने वाला है।

वेद यह भी निर्देश देता है कि स्त्री रोगों की चिकित्सा की व्यवस्था भी पृथक् से राज्य को करनी चाहिए। ऋग्वेद और अथर्ववेद में अनेक मन्त्रों में स्त्री के गुप्त अंगों तथा शरीर के अन्य अंगों के रोगों को दूर करने का विवेचन मिलता है। अथर्ववेद एवं ऋग्वेद दोनों में समान रूप से इस विषय में निम्न मन्त्र मिलता है–

ब्रह्माग्निः संविदानों रक्षोहा बाधतामितः।

अमीवा यस्ते गर्भ दुर्णामा योनिमाशये।।[81]

अर्थात् ब्राह्मण के साथ मिलकर राक्षसों को मारने वाला अग्नि (सम्राट) तेरे गर्भाशय में और योनि में जो रोग आ बैठा है, उसे यहाँ से हटायें।

10. न्याय एवं दण्ड व्यवस्था पर व्यय

यद्यपि वेदों में न्याय, न्यायाधीश, न्यायवित् न्यायाध्यक्ष आदि शब्द स्पष्ट रूप से नहीं मिलते हैं तथापि दूसरे ढंग से न्याय व्यवस्था का वर्णन मिलता है। आधुनिक युग में महान् वेदभाष्यकार महर्षि दयानन्द ने अग्नि, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, यम, सोम, आदित्य आदि वैदिक देवों की न्यायाधीश के पक्ष में अर्थ योजना की है।[82] न्याय व्यवस्था के लिए राजा को न्यायाधीशों की नियुक्ति करने का निर्देश अथर्ववेद में निम्न प्रकार दिया गया है–

परीमं सोममायुषे महे क्षत्राय धत्तन।

यथैनं जरसे नयां ज्योक् श्रोत्रेऽधि जागरत्।।[83]

अर्थात् हे राज्य के प्रधान पुरुषों! इस सौम्य गुण सम्पन्न न्यायाधीश को राष्ट्र की स्थिरता अर्थात् दीर्घायुष्य के लिए प्रजा के कष्टों व विवादों को सुनने के लिए नियुक्त करे। ये न्यायाधीश दीर्घकाल तक प्रजा के कष्टों को सुनने के लिए जागरूक रहें। अथर्ववेद में विवेचन मिलता है कि हे राजन्! हमारी प्राथनाओं को प्रीतिपूर्वक सुनिये तथा इस महान राष्ट्र के शासन के लिए अपने सहयोगी जनों के साथ तैयार रहिये।[84] वरूण राजा के कर्त्तव्य का उल्लेख करते हुए वेद में उसे सत्यासत्य का दर्शन करने वाला बताया गया है।[85] ऋग्वेद में इन्द्र राजा सर्वोच्च न्यायाधिकारी माना गया है। वेद में राजा के लिए धर्मकृत (न्याय करने वाला) शब्द का प्रयोग मिलता है।[86] अथर्ववेद में यह उल्लेख मिलता है कि निरापराधियों को ठगने, दूसरों को पीड़ित करने तथा शत्रुवत् व्यवहार करने वाला व्यक्ति

वैश्वानर अग्नि अर्थात् न्यायाधिकारी या न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के बंधन में बँधे बिना न रहे।[87] अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है कि राजा ऐसा प्रबन्ध करे जिससे चातुधान दूसरों की जानमाल हड़पने वाले लोग राजा के दण्ड के भय से स्वयं आकर विलाप करें अर्थात् आत्मसमर्पण कर अपराध स्वीकार करें।[88]

इस प्रकार वेदों में इस प्रकार के मन्त्र मिलते हैं जिससे स्पष्ट होता है कि राजा न्याय की सुन्दर व्यवस्था करें। यह सारा प्रबन्ध राजकीय कोष से ही होता था।

11. यातायात व्यवस्था पर व्यय

राष्ट्रीय राजकोष का कुछ भाग यातायात व्यवस्था पर व्यय किए जाने के संकेत वैदिक साहित्य में मिलते हैं। वेदों में अनेक ऐसे मन्त्र मिलते हैं जिनमें कहा गया है कि राज्य देशवासियों के सुखपूर्वक आने–जाने के लिए स्थान–स्थान पर सड़कों का और नदियों पर पुलों का निर्माण कराये।[89] वेदों में पृथ्वी तथा समुद्र के यातायात–साधनों के उल्लेख के अतिरिक्त अन्तरिक्ष में चलने वाले यानों का वर्णन मिलता है।[90] यातायात में सड़क निर्माण, नदियों पर पुल निर्माण, मार्ग में रक्षा–प्रबन्ध, मार्गों पर चलने वाले वाहन, इन सबकी व्यवस्था करने का दायित्व राज्य का है।

12. साहित्य, संगीत और कला के विकास में व्यय

वैदिक साहित्य में ललित कलाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वेदों में सुन्दर वाद्य यन्त्रों का वर्णन मिलता है। सामवेद का सामगान तो प्रसिद्ध ही है। इसी प्रकार नृत्य कला का विकास भी वैदिक काल से प्रारम्भ हो गया था। ऋग्वेद में उषा मन्त्रों में उषा को नर्तकी की उपमा दी गई है, तथा यजुर्वेद में वंशनर्तिन् (बॉस पर नाचने वाला) का उल्लेख आता है।[91] ऋग्वेद में देवताओं के नाचने का वर्णन भी मिलता है।[92] युवक–युवतियों के सजधज कर नाचने गाने, झूला–झूलने आदि का उल्लेख भी आता है।[93]

इस प्रकार साहित्य, संगीत, शिल्प आदि का राज्य में समुचित विकास हो, यह सुनिश्चित करना राज्य का दायित्व होता था। इस कार्य के लिए भी राजा द्वारा राजकीय बजट का कुछ अंश अवश्य निर्धारित किया जाता था।

13. धर्म एवं संस्कृति के प्रसार में व्यय

वेदों में ऐसे सहस्त्रों मन्त्रों का उल्लेख मिलता है, जिनमें ईश्वर का स्वरूप, आत्म–ज्ञान, मानव–कल्याण, भद्र–भावना, स्वस्ति–कामना, विश्व–शान्ति, बुद्धि और मेधा की उपासना, विद्या, प्रेम, निर्भयता, द्वेष त्याग, अमृतत्त्व आदि विषयों पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। इन उत्तमोत्तम गुणों का व्यापक प्रचार–प्रसार करना राजा का प्रमुख कर्त्तव्य माना गया है, जैसे देश–विदेश में जाकर अपने राज्य का हित सिद्ध करते हैं, उसी प्रकार ये धर्म या संस्कृति दूत प्रत्येक राष्ट्र में भेजे जाने चाहिए जिससे की सम्पूर्ण संसार में मानवता का साम्राज्य स्थापित हो सके।

राज्य के बजट का कुछ भाग इस पर व्यय किया जाता था। धर्म एवं संस्कृति हेतु जो धन व्यय होता है, वह अपराधों और दुर्वृतियों को नियन्त्रित कर राज्य को सुव्यवस्थित करता है, इसलिए यह अत्यन्त लाभदायक व्यय है। ऋग्वेद में ऐसे भी मन्त्र मिलते हैं, जिनमें राजा को अपनी प्रजाओं में धन बाँटने वाला कहा गया है।[94] इस प्रकार आवश्यकता पड़ने पर राजा द्वारा प्रजाजनों की सहायतार्थ राजकीय कोष से धन देने का स्पष्ट विधान वेदों में मिलता है।

कोष निर्माण

राज्य के संचालन के लिए राजा के पास भरपूर कोष की आवश्यकता सदैव बनी रहती है। राजा विभिन्न प्रकार के व्यय तभी कर सकता है, जब उसके पास विपुल मात्रा में धन हो। बिना राजस्व के न तो वह सैन्य व्यवस्था कर सकता है और न ही न्याय, चिकित्सा, शिक्षा, यातायात आदि कार्यों में धन व्यय कर सकता है। जिस राजा का कोष जितना समृद्ध होगा वह अपने राज्य को उतना ही सुदृढ़ और जनहितकारी बना सकेगा। राजकोष के क्षीण हो जाने पर सम्पूर्ण राज्य–व्यवस्था चरमरा जाती है। प्रसिद्ध इतिहासकार **अल्तेकर** ने भी कोष की महत्ता को स्वीकार करते हुए लिखा है कि राज्य की समृद्धि और स्थायित्व उसकी आर्थिक स्थिति की सुदृढ़ता पर ही निर्भर है। इस सिद्धान्त को प्राचीन आचार्य भली–भाँति समझते थे, इसलिए उन्होंने कोष की गणना राज्य के अंगों में की है और कोष या आर्थिक दुर्बलता को राष्ट्र की महान् विपत्ति माना है।[95]

कोष भरने का प्रमुख साधन कर ही था, जिसे वैदिक साहित्य में बलि[96] कह कर पुकारा गया है। इन विवरणों में जिस प्रकार बलि शब्द का उल्लेख हुआ है, उनकी व्याख्या इस प्रकार है, यथा – सभी जन प्रकाश को बलि ले जाते हैं[97] हे युवतम अग्नि, मनुष्यगण निकट से और दूर से तुम्हारे लिए बलि ले आते हैं।[98] साधारण लोक (बलिह्रत) राजा के लिए बलि (कर) लाने वाले[99], अज, शिग्रु और यक्षु नामक जनपदों ने इन्द्र को अश्वों के सर 'बलि' के रूप में प्रदान किए।[100] हे राजन! प्रजाओं से प्राप्त होने वाले प्रभूत कर (बलि) की ओर देख[101], हे भूमि! हम दीर्घ आयु को भोगते हुए तेरे लिए बलि (कर) देने वाले बने रहे[102], लोग राजा के लिए बलि लाते हैं।[103] और वैश्य अन्य (राजा) को कर (बलि) देता है।[104] **अल्तेकर**[105] के अनुसार धर्मप्रधान होने के कारण वैदिक वॉड्मय से तत्कालीन राज्यों की आर्थिक व्यवस्था के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती है। राज्यों के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में राजा की शक्ति अधिक नहीं थी और लोग स्वेच्छा से जो कभी–कभी दे देते थे वही उसे कर रूप में प्राप्त होता था। अस्तु राजा अपने अनुयायियों और कर्मचारियों का पोषण अपनी ही भूमि,

चरागाहों और गोधन से प्राप्त होने वाली आय से ही किसी भाँति किया करता था। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए चढ़ाई जाने वाली भेंट का नाम ही 'बलि' राजा को स्वेच्छा से दिये जाने वाले करों या अन्य उपहारों के लिए भी प्रयुक्त होने लगा। राज्य भ्रष्ट राजा के पुनः राज्य प्राप्ति के समय प्रार्थना की जाती है कि इन्द्र भगवान उसे प्रजा से बलि दिलवाने में सहायता दे।[106] और उसे प्रजा से प्रचुर उपहार और बलि प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हो।[107] इन प्रार्थनाओं से भी यह ध्वनि निकलती है कि जनता अभी राजा को नियमित कर देने में अभ्यस्त नहीं हो पायी थी।

उत्तरवैदिक काल में इस स्थिति में परिवर्तन आता है। ऐतरेय ब्राह्मण[108] में राज्याभिषेक के समय राजा को प्रजा का खाने वाला (विशामत्ता) कहा गया है। इस सम्बोधन से यही बोध होता है कि लोग राजा को नियमित रूप से कर दिया करते थे, और इसी के बल पर राजा अपने कर्मचारियों सहित ठाठ–बाट से रहता था।

लेकिन **विमल चन्द पाण्डेय**[109] विशामत्ता के उपर्युक्त अर्थ से सहमत नहीं है उनके अनुसार कभी–कभी राजा के लिए विषमत्ता का प्रयोग मिलता है। **हाप्किन्स** ने इसका अर्थ जनता का भक्षक लगाया है और इस आधार पर यह मत प्रतिपादित किया है कि वैदिक राजा जनता का आर्थिक शोषण करता था। परन्तु यह अर्थ न्याय संगत नहीं है। अत्ता का अर्थ भक्षक के अतिरिक्त भोगी भी होता है। राजा प्रजा के करो एवम् उपहारों का उपभोग करता था। इसी कारण उसे अत्ता कहा गया है। बौद्ध साहित्य में कहीं पर भी ऐसे साक्ष्य नहीं मिलते हैं, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि राजकर अत्यधिक थे। वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि राजा सभी प्रजाजनों से कर लेता था।[110] परन्तु साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि वैदिक साहित्य में ब्राह्मणों पर कर लगाने की निन्दा की गई है। तथा कहा गया है कि जो ब्राह्मणों से कर वसूल करता है वह रक्त् की नदी में बालों (केशों) को खाता है।[111] कर का मुख्य भार वैश्यों पर ही पड़ता होगा, क्योंकि वैश्यों को ऐतरये ब्राह्मण में कर देने वाला कहा गया है।[112]

वैदिक ग्रन्थों से कर की मात्रा के विषय में कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। ऋग्वेद[113] की एक ऋचा से ज्ञात होता है कि वायु जैसे जल पीता है, वैसे ही तुम (वेश्वानर) प्रजा से (कर के रूप में प्राप्त) ऐश्वर्य को पीते हो। इसका अर्थ है कि राजा को अपनी प्रजा से उतना ही कर वसूल करना चाहिए कि जिससे उसको जरा भी कष्ट न हो। अथर्ववेद[114] के इस मन्त्र से ज्ञात होता है कि प्रजाजनों की आय का 16वाँ भाग राजा को कर के रूप में प्राप्त होता था। कृषि से प्राप्त आय के अतिरिक्त कर के रूप में घोड़े और गाय आदि भी प्राप्त होते थे।[115] युद्ध में पराजित राजाओं से प्राप्त उपहार भी राजा के कोष में वृद्धि करते थे।[116] कोष का निर्माण राष्ट्र की आर्थिक प्रगति के लिए बहुत आवश्यक है।

राजस्व प्रशासन

ऋग्वैदिक काल में राजस्व प्रशासन संगठित नहीं हो सका था। इस समय कबीले के प्रमुख के रूप में राजा था। जिसकी सहायता के लिए पुरोहित, सेनानी एवं ग्रामणी नामक तीन अधिकारी थे। कबीले के लोग राजा को अपनी इच्छा से बलि प्रदान करते थे, इसलिए ऋग्वैदिक काल में राजा ही अकेला प्रजा से बलि (कर) प्राप्त करने वाला अधिकारी था।[117] कर के रूप में पारिश्रमिक प्राप्त करके राजा प्रजा की रक्षा करता था।

उत्तर वैदिककाल में राज्यों के आकार में वृद्धि के साथ प्रशासनिक तन्त्र भी विस्तृत एवं जटिल हुआ। शासन संचालन में राजा मन्त्रियों की एक परिषद की सहायता लेता था। इन पदाधिकारीयों को **रत्नीन** कहा जाता था। **शतपथ ब्राह्मण** में 12 रत्नियों का उल्लेख मिलता है।[118] रत्नियों में से तीन रत्नियों का सम्बन्ध राजस्व प्रशासन से था। **भागदुध** नामक पदाधिकारी राज्य कर को वसूल करता था। इसका कार्य अर्थशास्त्र में वर्णित समाहर्ता जैसा रहा होगा।

राजस्व विभाग का दूसरा महत्त्वपूर्ण अधिकारी **संगृहीता** (कोषाधिकारी) था। इसी के लिए कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में सन्निधाता शब्द का प्रयोग किया गया है।[119] आय–व्यय का हिसाब रखने वाले प्रधान अधिकारी की संज्ञा अक्षवाप थी कौटिल्य ने इसी को अक्षपटलाध्यक्ष कहा है।[120]

उत्तर वैदिककाल में 'बलि' नियमित कर हो गया था। अथर्ववेद में यह भी उल्लेख मिलता है कि राजा विष को खा सकता है, अर्थात् प्रजा पर भारी कर लगा सकता है। करों का बोझ मुख्यतः कृषकों, व्यापारियों, कलाकारों, शिल्पियों आदि पर ही पड़ता था। ब्राह्मण एवं राजन्य (क्षत्रीय) वर्ग के लोग अधिकांश, राजकीय करों से मुक्त थे। सम्भवतः आय का 16वाँ भाग राजा को मिलता था। इस प्रकार ऋग्वैदिक काल में तो राजस्व प्रशासन की कोई प्रमाणिक जानकारी नहीं मिलती है लेकिन उत्तरवैदिक में नियमित अधिकारियों का अस्तित्व उनके द्वारा कर एकत्रित करने तथा शाही खजाने में जमा कराने के प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि इस काल में राजस्व विभाग का संगठन प्रारम्भ हो चुका था।

सन्दर्भ सूची

1. ऋग्. 1.15.1
2. ऋग्. 1.23.7
3. ऋग्. 3.47.2
4. ऋग्. 5.1.10
5. ऋग्. 10.160.3

6. ऋग्. 10.160.3
7. ऋग्. 10.173.6
8. विशश्चक्रे बलिहृतः ऋ.द.भा. 7.6.3
9. सत्यार्थ प्रकाश, षष्ठ समु. पृ. 145
10. यजु. द. भा. 23.28
11. ऋ.द.भा. 7.8.6
12. अच्छात्वायन्तु ध्विनः सजाता अग्निर्दतो अंजिर संचरातै जायाः पुत्रा सुमनसो भवन्तु बहुँ बलिं प्रतिपश्यासा उग्रः।। अथर्व, 3.4.3
13. श्रांत हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो विमध्यम्।
परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम्।। ऋग्, 10.179.2
14. अथर्व, 1.8.1
15. अथर्व, 1.8.3
16. अथर्व, 1.21.1
17. अथर्व, 3.4.3
18. अथर्व, 12.1.62
19. अथर्व, 7.94.1
20. ऋग्, द.भा. 1.114.3
21. ऋग् 7.5.7
22. अथर्व, 3.29.1
23. अथर्व, 3.29.2
24. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.13
25. अथर्ववेद 5.15.3
26. ऐत. ब्राह्मण 35.3
27. तं न अग्ने मघवद्यः पुरूक्ष रयिं निवाजं श्रुतयं युवस्व।
वैश्वानर महि नः शर्म यच्छ रूद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः।। ऋग्वेद म. 7 अ. 1 सूक्त 5/9
28. खेर अग्रेरियन एण्ड फिस्कल इकॉनामी, पृ. 294
29. ऋग्वेद, 1/70/9, 5/1/10
30. वही, 7/6/5, 10/173/6
31. वैदिक इण्डेक्स 2, पृ. 62
32. घोषाल, यू. एन. हिन्दू राजस्व व्यवस्था, पृ. 3
33. ऋग्वेद, 10.176.6
34. जिमर, लाइफ इन एनशिएट इण्डिया (जर्मन संस्करण), पृ. 166
35. वैदिक इनडेक्स, द्रष्टव्य, बलि शब्द
36. तुल सेलिग्मैन, एसेज इन टैक्सेशन, नवम् संस्करण, पृ. 2–3
37. ऐतरेय ब्राह्मण, 7/29
38. ऐतरेय ब्राह्मण, 7/29, विशामत्ता समजनि
39. अथर्ववेद, 3/4/3
40. प्रो. इंगलिग, उद्धृत बी. ए. सोल्टर – एन्शिऐट इण्डियन पॉलिटिकल थाट एण्ड इन्सुटुशन, पृ. 44.3
41. तैत्तरिय संहिता, 1/8/2
42. वैदिक इण्डेक्स – 2, पृ. 100
43. इमा हत्या वहते कल्पयासो मा देवानां मूमुहो भागाधेयम् कपिलष्ठलकस संहिता 2/10/11/12
44. एष ते रुद्र भाग : सह स्वस्त्राम्बिकया तं जुषस्वः शतपथ ब्राह्मण 2/5/3/9

45. अथर्ववेद, 3.29
46. वैदिक इण्डेक्स, खण्ड दो, पृ. 387
47. मजूमदार, आर.सी.हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन प्यूपल, पृ. 396
48. मैत्रायणी संहिता 1, 10, 16 रू प्टए 3.1
49. यू. एन. घोषाल, पूर्वोक्त, पृ. 3
50. ऋग्वेद 7/18/19
51. तुल वैदिक इण्डेक्स, पूर्वोक्त स्थल
52. अथर्ववेद, 3.24.6
53. ऋग्वेद 2.19.2
54. ऋग्वेद, 6.28.2
55. ऋग्वेद, 1.83.4
56. अथर्ववेद, 3.15.8
57. इन्द्र सोमा : सुता इमे तव प्रयन्ति सत्यते।
क्षयं चन्द्रास इन्दवः। ऋग्. 3.40.4
58. स्वामी दयानन्द का आर्थिक चिन्तन, डॉ. राजकृष्ण आर्य, पृ. 177
59. धन्वना गा धन्वनाजि जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम।
धनुः शत्रोरपक्रामं कृष्णोति धन्वना सर्वाः प्रादिशो जयेम।। यजु. 29.39
60. ऋग्वेद, 5.7.2, 6
61. यजुर्वेद, द. भा. 17.48, 18.77
62. सत्यार्थ प्रकाश, षष्ठ समु. पृ. 152
63. यजुर्वेद द. भा. 16.3.5
64. उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर।। ऋग्. 5.6.9
65. यजुर्वेद द. भा. 17.48
66. ऋग्वेद द. भा., 4.15.4 तथा यजु. भा. 17.50
67. ऋग्, 1.166.2
68. ऋग्, 5.06.03
69. ऋग्, 5.60.5
70. ऋग्, 7.56.14
71. ऋग्, 1.31.1
72. ऋग्, 1.53.2
73. ऋग्, 1.62.12
74. अथर्ववेद 12.1.29
75. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। अथर्ववेद 11.5.18
76. ऋग्वेद, 1.9.7
77. ऋग्वेद, 1.10.11
78. ऋग्वेद, 3.16.3
79. अग्ने त्वमस्मद् युयोध्यमीवाः। ऋग् 1.189.3
80. विश्वा अमीवाः प्रमुन्चन्। अथर्ववेद 7.84.1
81. ऋग्, 10.162.1 तथा अथर्व 20.96.1
82. द्रष्टव्य – दयानन्द भाष्य, अग्ने न्यायाधीश। ऋग्वेद 6.16.31

इन्द्र नयेश विद्वन। ऋग्वेद 6.21.8
वरूण न्यायकारिन्, यजुर्वेद 6.22
अर्यमा योऽनि मन्यते स न्यायाधीशः। यजुर्वेद 36.9
यमाय नियन्त्रे न्यायाधीशाय वायवे वा। यजुर्वेद 39.13
यमेन न्यायाधीशने यजुर्वेद 12.63
सोम : सुखैश्वर्यकारको न्यायः। ऋग्. 1.136.4
आदित्यनाम् अखण्डित न्यायाधीशानाम्। यजुर्वेद 25.6

83. अथर्व. 19.24.3
84. आत्वा विशन्तु सुतास इन्द्र पृणस्व कुक्षीविऽढि शक्र धियेह्या। ....यहे रणाय। न. 1 अथर्व. 2.5.4
85. सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम्। ऋग्वेद 7.49.3
86. इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्।
धर्मकृते विपशिचे पनस्यवे।। ऋग् 8.98.1
87. यो नो दिप्सदविप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति।
वैश्वानरस्य दंष्ट्र योरग्नेरपि दधामि तम्।। अथर्व, 4.36.2
88. विलपन्तु यातुधाना अत्रिणो ये किमीदिनः। अथर्व. 1.7.3
89. यजुर्वेद 2.22. 29.20
90. ऋग्वेद 4.35.1, यजुर्वेद 21.6, 18.52
91. ऋग्वेद 1.10.1, यजुर्वेद 30.21
92. ऋग्वेद, 10.72.6
93. ऋग्वेद, 7.87.5, 7.88.3
94. ऋग्वेद, 1.22.7, 4.54.1
95. अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ. 202
96. ऋग्वेद, 1.70.5, 5.1.10, 7.6.5, 7.18.19, 10.173.6, अथर्ववेद 3.4.3, 12.1.62, तौ. ब्राह्मण 2/7/18/3, तै. ब्रा. 35/3
97. भरन्त विश्वे बलि स्वर्ग ऋग्. 1.70.5
98. ऋग्. 5.1.10
99. वही, 10.173.6
100. वही, 7.18.19
101. अथर्व, 3/4/3
102. वही, 12/1/62
103. तै. ब्रा. 2/7/18/3
104. ऐत. ब्राह्मण 35/3
105. अल्तेकर पूर्वोक्त, पृ. 201
106. अया ते इन्द्रः केवली : प्रजा बकिहतस्करत् ऋग्. 10.173.6
107. अथर्व 3.4.3
108. विशामत्ता समजनि/ऐत. ब्राह. 7.29
109. पाण्डेय, विमलचन्द्र, प्राचीन भारत का सामा एवं सांस्कृतिक इति. पृ. 157
110. सिंह प्रतीकों विशो उद्धि सर्वा. अथर्ववेद 4.22.7
111. अथर्ववेद 5/15/3
112. वैश्यकल्पस्ते प्रजायामार्जान्ष्यतेअन्यस्य बलि कृदन्यस्याऽऽधो ऐत. ब्रा. 35/3
113. ऋग्वेद, 7/6/7
114. षोडश यम स्थायी समासद। अथर्व 3/29/1
115. एम भज ग्रामे अश्वेषु गोषु, वही 4/22/2

116. ऋग्वेद 4/18/19
117. ऋग्वेद 10/176/6
118. शतपथ ब्राह्मण 5/2/5/01
119. कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/5
120. वही, 2/7